# जैनदर्शन में भावना विषयक चिन्तन

☐ डा० श्रीमती शान्ता भानावत एम० ए०, पी-एच० डी०
(प्रिंसीपल, वीर बालिका महाविद्यालय, जयपुर (राज०)

## भावना : अर्थ और परिभाषा

भावना का जीवन में बड़ा महत्त्व है। किसी भी विषय पर मनोयोगपूर्वक चिन्तन करना या विचार करना भावना है। चिन्तन करने से मन में संस्कार जागृत होते हैं। जैसा चिन्तन होगा, वैसे ही संस्कार बन जायेंगे। कहा भी जाता है—जैसी नीयत वैसी बरकत। अर्थात् जैसी भावना होगी, वैसा ही फल मिलेगा। अतः भावना एक प्रकार का संस्कार अथवा संस्कारमूलक चिन्तन है। इसे हम विचारों की तालीम (ट्रेनिंग) भी कह सकते हैं।

'आवश्यक सूत्र' के प्रसिद्ध टीकाकार आचार्य हरिभद्र ने भावना की परिभाषा देते हुए कहा है—**'भाव्यतेऽनयेति भावना'** अर्थात् जिसके द्वारा मन को भावित किया जाय, संस्कारित किया जाय, उसे भावना कहते हैं।[1] आचार्य मलयगिरि ने भावना को परिकर्म अर्थात् विचारों की साज-सज्जा कहा है। जैसे शरीर को तेल, इत्र, अंगराग आदि से बार-बार सजाया जाता है, वैसे ही विचारों को अमुक विचारों के साथ बार-बार जोड़ा जाता है।[2] आगमों में कहीं-कहीं भावना को अनुप्रेक्षा भी कहा गया है। 'स्थानांग सूत्र' में ध्यान के प्रकरण में चार अनुप्रेक्षाएँ बताई गई हैं।[3] वहाँ अनुप्रेक्षा का अर्थ भावना किया है। अनुप्रेक्षा का अर्थ है—आत्मचिन्तन। आचार्य उमास्वाति ने भी भावना के स्थान पर अनुप्रेक्षा शब्द का प्रयोग किया है और कहा है—भगवद् कथित विषयों पर चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। आचार्य कुन्दकुन्द ने भी भावना के स्थान पर 'अणुवेक्खा' शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने बारह भावना पर एक ग्रन्थ भी लिखा है, जिसका नाम है "बारस अणुवेक्खा"।

जैन आचार्यों ने भावना के सम्बन्ध में बड़ा ही गहरा और व्यापक विश्लेषण किया है।[4] सचमुच भावना का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि वह सामान्य चिन्तन से प्रारम्भ होकर जप और ध्यान की उच्चतम भूमिका तक चला जाता है। आगमों में भावना को कहीं अत्यन्त वैराग्य प्रधान आत्म-विचारणा के रूप में लिया है, कहीं मनोबल को सुदृढ़ करने वाली साधना के रूप में, कहीं चारित्र को विशुद्ध रखने वाले चिन्तन और आचरण को भी भावना के रूप में बताया गया है तथा मन के विविध शुभाशुभ संकल्प-विकल्पों को भी भावना बताया है।

---

१ आवश्यक ४, टीका।
२ बृहत्कल्पभाष्य, भाग २, गाथा १२८५ की वृत्ति, पृ० ३९७।
३ स्थानांग ४।१
४ भावना विषयक विस्तृत अध्ययन के लिए देखें—**'भावना योग'** (लेखक—आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषिजी : संपादक—श्रीचन्द सुराना)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## भावना का महत्व

भाव एक नौका है जिस पर चढ़ कर संसार-सागर से पार उतरा जा सकता है। यह धर्म रूप द्वार खोलने की कुंजी है। भाव एक औषधि है जिससे भवरोग की चिकित्सा की जाती है। भाव से रहित आत्मा कितना ही प्रयत्न करे, मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकती। शास्त्रों में मोक्ष के चार मार्ग बताये गये हैं—दान, शील, तप और भाव। इनमें अन्तिम मार्ग भाव है। भाव के अभाव में दान, शील, तप आदि केवल अल्प फलदायक होंगे। दान के साथ दान देने की शुद्ध भावना होगी, शील पालने की सच्ची भावना होगी और तप करने के सुन्दर भाव होंगे तभी वे मुक्ति के हेतु बनेंगे। अतः यह बात शत-प्रतिशत सही है कि भावशून्य आचरण सिद्धिदायक नहीं होता। तभी कहा जाता है—'जो मन चंगा तो कठौती में गंगा।'

सचमुच भगवान् का निवास शुद्ध भावों में ही है। जो लोग भावना की शुद्धि को महत्त्व न देकर परमात्मा को मन्दिर, मसजिद, गिरजाघर में ढूंढ़ने का प्रयत्न करते हैं, उनसे कबीर कहते हैं—

**मुझको कहाँ ढूंढ़े बन्दे, मैं तो तेरे पास में।**
**ना मैं मक्का, ना मैं काशी, ना काबे कैलास में।**
**मैं तो हूँ विश्वास में।**

और परमात्मा को पाने के लिए वे 'कर का मनका' छोड़कर 'मन का मनका' फेरने की बात कहते हैं। मात्र माला के मणियों को फेरने से प्रभु नहीं मिलेंगे, उनसे मिलने के लिए तो मन को शुद्ध करना होगा।

'पद्मपुराण' में भी एक प्रसंग आता है। एक बार नारदजी भगवान विष्णु से पूछते हैं कि भगवन्! आपका निवास-स्थान कहाँ है? विष्णु ने उत्तर दिया—

**नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न च।**
**मद् भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद॥**

अर्थात् न मैं बैकुण्ठ में रहता हूँ, न शेषशय्या पर और न योगियों के हृदय में, किन्तु मेरे भक्त जहाँ भावना के साथ मुझे पुकारते हैं, मैं वहीं उपस्थित रहता हूँ।

## भावना के प्रकार

यों तो भावना के अलग-अलग दृष्टियों से अनेक प्रकार किये गये हैं, पर मूलतः भावना के दो भेद हैं—अशुभ भावना और शुभ भावना। शास्त्रीय भाषा में इसे क्रमशः संक्लिष्ट और असंक्लिष्ट भावना भी कहा जाता है।

## अशुभ भावना

मन जब राग-द्वेष, मोह आदि के अशुभ विकल्पों में उलझ कर निम्न गति करता है, दुष्ट चिन्तन करता है तब वह चिन्तन अशुभ भावना कहलाता है। यह अशुभ भावना जीव की दुर्गति का कारण बनती है, उसे पतन की ओर ले जाती है। अशुभ भावना बड़े-बड़े तपस्वी मुनियों को भी नरक गति अथवा दुर्गति में ठेल देती है।

अशुभ भावना के कई भेद किये जा सकते हैं। उत्तराध्ययनसूत्र के ३६ वें अध्ययन में चार अशुभ भावनाओं का उल्लेख किया गया है। वे हैं—(१) कन्दर्प भावना (२) आभियोगी भावना (३) किल्विषी भावना और (४) आसुरी भावना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'स्थानांग सूत्र' में चार अशुभ भावनाओं के प्रत्येक के चार-चार भेद करके सोलह प्रकार बताये हैं जो इस प्रकार हैं[1]—

**(१) आसुरी भावनाओं के चार भेद—**

(क) क्रोधी स्वभाव,
(ख) अति कलहशीलता,
(ग) आहारादि में आसक्ति रखकर तप करना,
(घ) निमित्त प्रयोग द्वारा आजीविका करना।

**(२) आभियोगी भावना के चार भेद—**

(क) आत्मप्रशंसा—अपने मुँह से अपनी प्रशंसा करना,
(ख) परपरिवाद—दूसरे की निन्दा करना,
(ग) भूतिकर्म—रोगादि की शान्ति के लिए अभिमन्त्रित राख आदि देना,
(घ) कौतुककर्म—अनिष्ट शान्ति के लिए मन्त्रोपचार आदि कर्म करना।

**(३) सम्मोही भावना के चार भेद—**

(क) उन्मार्ग का उपदेश देना,
(ख) सन्मार्ग—यात्रा में अन्तराय या बाधा डालना,
(ग) काम-भोगों की तीव्र अभिलाषा करना,
(घ) अतिलोभ करके बार-बार नियाण (निदान) करना।

**(४) किल्विषी भावना के चार भेद—**

(क) अरिहन्तों की निन्दा करना,
(ख) अरिहन्त कथित धर्म की निन्दा करना,
(ग) आचार्य, उपाध्याय की निन्दा करना,
(घ) चतुर्विध संघ की निन्दा करना।

अशुभ भावना के इन रूपों का विवेचन करने का यही अभिप्राय है कि इसके दुष्परिणामों से बचा जाय और अपने अन्तःकरण को पवित्र किया जाय।

## शुभ भावना

चारित्र को समुज्ज्वल बनाने के लिये शुभ भावना का बड़ा महत्व है। शुभ भावना के बार-बार चिन्तन से साधक सुसंस्कारी बनता है और कल्याण-मार्ग की ओर प्रवृत्त होता है। वह संसार में रह कर भी सांसारिक कलुषता में डूबता नहीं। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच महाव्रत हैं। ये व्रत जीवन में असंयम का स्रोत रोक कर संयम का द्वार खोलते हैं। इन महाव्रतों की निर्दोष परिपालना के लिये यह आवश्यक है कि इन महाव्रतों पर चिन्तन किया जाय। ये भावनाएँ चारित्र को दृढ़ करती हैं। इसलिये इन्हें चारित्र भावना भी कहते हैं। प्रश्नव्याकरणसूत्र के आधार पर पाँच महाव्रतों की भावनाओं का उल्लेख इस प्रकार है—

**(१) अहिंसा महाव्रत की पांच भावनाएँ—**

(क) ईर्यासमिति भावना—गमनागमन में सावधानी बरतना।
(ख) मनःसमिति भावना—मन को सम्यक् चर्या में लगाना।
(ग) वचनसमिति भावना—वाणी पर संयम रखना।

---

१ स्थानांग सूत्र, ४।४, सूत्र ३५४ मुनि श्री कन्हैयालाल 'कमल' द्वारा सम्पादित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(घ) एषणा समिति भावना—निर्दोष आहार की गवेषणा करना।
(न) आदान निक्षेपण समिति-भावना—विवेकपूर्वक वस्तु ग्रहण करना और रखना।

**(२) सत्य महाव्रत की पाँच भावनाएँ—**

(क) अनुचित्य समिति भावना—सत्य के विविध पक्षों पर चिन्तन करके बोलना।
(ख) क्रोध निग्रह रूप क्षमा भावना—क्रोध-त्याग।
(ग) लोभविजय रूप निर्लोभ भावना—लोभ-त्याग।
(घ) भय मुक्ति रूप धैर्ययुक्त अभय भावना—भय-त्याग।
(न) हास्य मुक्ति वचन संयम भावना—हास्य-त्याग।

**(३) अचौर्य महाव्रत की पाँच भावनाएँ—**

(क) विविक्तवास समिति भावना—निर्दोष स्थान में निवास का चिन्तन।
(ख) अनुज्ञात संस्तारक ग्रहण रूप अवग्रह समिति भावना—निर्दोष ओढ़ना-बिछौना।
(ग) शय्या-परिकर्म वर्जन रूप शय्या समिति भावना—शोभा-सजावट की वर्जना।
(घ) अनुज्ञात भक्तादि भोजन लक्षण साधारण पिंडपात लाभ समिति भावना—सामग्री के समान वितरण और संविभाग की भावना।
(न) साधर्मिक विनयकरण समिति भावना—साधर्मिक के प्रति विनय व सद्भाव।

**(४) ब्रह्मचर्य महाव्रत की पाँच भावनाएँ—**

(क) असंसक्तवास वसति—ब्रह्मचर्य में बाधक कारणों, स्थानों और प्रसंगों से बचना।
(ख) स्त्रीकथाविरति—स्त्री के चिन्तन और कीर्तन से बचना।
(ग) स्त्रीरूपदर्शनविरति—स्त्री के रूप सौन्दर्य के प्रति विरक्ति।
(घ) पूर्वरत—पूर्वक्रीड़ितविरति—विकारजन्य पूर्व स्मृतियों का चिन्तन न करना।
(न) प्रणीत आहारत्याग—आहार संयम, तामसिक भोजन का त्याग।

**(५) अपरिग्रह महाव्रत की पाँच भावनाएँ—**

(क) श्रोत्रेन्द्रियसंवर भावना—श्रोत्रेन्द्रिय के मनोज्ञ-अमनोज्ञ विषयों में राग-द्वेष न करना।
(ख) चक्षुरिन्द्रिय संवर भावना—चक्षुरिन्द्रिय के मनोज्ञ-अमनोज्ञ विषयों में राग-द्वेष न करना।
(ग) घ्राणेन्द्रिय संवर भावना—घ्राणेन्द्रिय के मनोज्ञ-अमनोज्ञ विषयों में राग-द्वेष न करना।
(घ) रसनेन्द्रिय संवर भावना—रसनेन्द्रिय के मनोज्ञ-अमनोज्ञ विषयों में राग-द्वेष न करना।
(न) स्पर्शनेन्द्रिय संवर भावना—स्पर्शनेन्द्रिय के मनोज्ञ-अमनोज्ञ विषयों में राग-द्वेष न करना।

जीवन में पाँच महाव्रतों की रक्षा के लिए, उन्हें परिपुष्ट बनाने के लिए और जीवन को सुसंस्कारवान बनाने के लिये उक्त २५ चारित्र भावनाएँ बताई गई हैं। इन भावनाओं के चिन्तन, मनन और जीवन में इनका प्रयोग करने से साधक को त्यागमय, तपोमय एवं अनासक्त जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है। परिणामस्वरूप वह संयम के पथ पर सफलतापूर्वक चल सकता है।

## भावना भवनाशिनी

शुभ भावना मानव को जन्म-मरण के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाली है। शुभ भावनाओं के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभाव से ही प्रसन्नचन्द्रराजर्षि ने केवलज्ञान प्राप्त किया, शुभ भावना के प्रभाव से पशु भी स्वर्गगति के अधिकारी बने हैं। महामुनि बलभद्र की सेवा में रहने वाला हरिण आहार बहराने की उत्कृष्ट भावना से काल करके पाँचवें देवलोक का, चण्डकौशिक सर्प भगवान महावीर के द्वारा प्रतिबोध प्राप्त कर दया की सुन्दर भावना से ओतप्रोत होकर आठवें देवलोक का, नन्दण मणियार का जीव मेंढक के भव में भगवान के दर्शनों की शुभ भावना से काल कर सद्गति का अधिकारी बना। अतः चाणक्य नीति में ठीक ही कहा है—

"भावना भवनाशिनी।"

यों तो प्रत्येक मनुष्य के हृदय में अनेक भावनाएँ उठती हैं पर धर्मध्यान से परिपूर्ण भावना ही उसके कर्मों का नाश करती है। आज के वैज्ञानिक युग में मानव का चिन्तन दिन पर दिन भौतिक सुखों की खोज में भटक रहा है। वह हजारपति है तो कैसे लखपति-करोड़पति बन सकता है, एक बंगला है तो दो-तीन और कैसे बन जायें के स्वप्न देखता रहता है। इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त होती हैं। उन्हीं अनन्त इच्छाओं की पूर्ति के लिये नए-नए रास्ते ढूंढ़ने में वह दिन-रात लगा रहता है। परिणामस्वरूप उसका आध्यात्मिक चिन्तन छूट गया है। आध्यात्मिक चिन्तन के अभाव में आज के मानव में राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ की दुष्प्रवृत्तियाँ अधिकाधिक घर करती जा रही हैं, परिणामस्वरूप उसका जीवन कुंठाओं से ग्रस्त निराशाओं से आक्रान्त और अशान्त बन गया है। शुभ भावना से अर्थात् पवित्र भावना से व्यक्ति का मनोबल बढ़ता है। वह मुसीबत आने पर घबड़ाता नहीं, वरन् उसका बड़े धैर्य और साहस से मुकाबला करता है। पर आज के मानवीय जीवन में इसका अभाव है। इसीलिए आज व्यक्ति थोड़ी-सी मुसीबत आने पर जल्दी टूट जाता है। अखबारों में आत्महत्या के जो किस्से रातदिन पढ़ने को मिलते हैं, उसका एकमात्र कारण शुभ भावना का अभाव है।

## बारह भावना

पाँच महाव्रतों की २५ चारित्र भावनाओं की भाँति बारह वैराग्य भावनाओं का आगम एवं आगमेतर ग्रन्थों में बहुत वर्णन मिलता है और इस पर विपुल परिमाण में साहित्य रचा गया है। इस भावधारा का चिन्तन निर्वेद एवं वैराग्योन्मुखी होने से इसे वैराग्य भावना कहा गया है। इस भावना से साधक में मोह की व्याकुलता एवं व्यग्रता कम होती है तथा धर्म व अध्यात्म में स्थिरीकरण होता है। बारह भावनाओं का स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है—

### (१) अनित्य भावना

इस भावना का अर्थ यह है कि जगत् में जितने भी पौद्गलिक पदार्थ हैं वे सब अनित्य हैं। यह शरीर, धन, माता, पिता, पत्नी, पुत्र, परिवार, घर, महल, आदि जो भी वस्तुएँ हमसे सम्बन्धित हैं या जो भी वस्तुएँ हमें प्राप्त हैं वे सब अनित्य हैं, क्षणभंगुर हैं, नाशवान हैं, फिर इन पर मोह क्यों? घास की नोंक पर ठहरे हुए ओस कण की भांति जीवन भी आयुष्य की नोंक पर टिका हुआ है। आयुष्य की पत्तियाँ हिलेंगी और जीवन की ओस सूख जायेगी इसलिये व्यक्ति को क्षणभर भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। हितोपदेश में भी कहा गया है—

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यं संचय।
ऐश्वर्यः प्रिय संवासो, मुह्यंत तत्र न पंडितः॥

अर्थात् यौवन, रूप, जीवन, धन, संग्रह, ऐश्वर्य और प्रियजनों का सहवास ये सब अनित्य हैं अतः ज्ञानी पुरुषों को इनमें मोहित नहीं होना चाहिए। ऐसा विचारना ही अनित्य भावना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरत चक्रवर्ती के पास वैभव व समृद्धि की क्या कमी थी। एक दिन वे अंगुली में अंगूठी पहनना भूल गये। जब उनकी नजर अंगुली पर गई तो उसकी शोभा उन्हें फीकी लगी। उन्होंने एक-एक करके शरीर के सारे आभूषण उतार दिये तब उन्हें यह समझते देर न लगी कि शरीर बाह्य वस्त्राभूषणों से ही सुन्दर लगता है, बिना वस्त्राभूषणों के स्वयं शोभाहीन है। वे सोचने लगे आज मेरा भ्रम टूट गया, अज्ञान और मोह का पर्दा हट गया। जिस शरीर को मैं सब कुछ समझ रहा था उसकी सुन्दरता स्वस्थता पराश्रित है। इसी अनित्य भावना के चिन्तन में भरत चक्रवर्ती इतने गहरे उतरे कि शीशमहल में बैठे-बैठे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

## (२) अशरण भावना

इस भावना के अन्तर्गत सांसारिक प्राणी को यह चिन्तन करना चाहिए कि संसार की प्रत्येक वस्तु जो परिवर्तनशील, नाशवान है वह आत्मा की शरणागत नहीं हो सकती। जिस प्रकार सिंह हरिण को पकड़ कर ले जाता है उसी प्रकार मृत्यु भी मनुष्य को ले जाती है। उस समय माता-पिता व भाई आदि कोई भी जीवन का भाग देकर उन्हें नहीं बचा सकते। इस प्रकार अनाथी मुनि की भाँति मोक्षाभिमुख साधक को चिन्तन करना चाहिए कि इस संसार में कोई भी वस्तु शरण रूप नहीं है। केवल एक धर्म अवश्य शरण रूप है जो मरने पर भी जीव के साथ रहता है और सांसारिक, रोग, जरा, मृत्यु आदि दुखों से प्राणी की रक्षा करता है।

## (३) संसार भावना

जन्म-मरण के चक्र को संसार कहते हैं। प्रत्येक प्राणी जो जन्म लेता है वह मरता भी है। संसार में चार गति, २४ दंडक और चौरासी लाख जीव योनियों में वह भ्रमण करता रहता है। विशेषावश्यक में संसार की परिभाषा यही की है—एक भव से दूसरे भव में, एक गति से दूसरी गति में भ्रमण करते रहना संसार है।

संसार भावना का लक्ष्य यही है कि मनुष्य संसार की इन विचित्रताओं, सुख-दुःख की इन स्थितियों का चित्र अपनी आँखों के सामने लाये। नरक, निगोद और तिर्यंच गति में भोगे हुए कष्टों का अन्तर की आँखों से अवलोकन करें और मन को प्रतिबुद्ध करें कि इस संसार भ्रमण से मुक्त कैसे होऊँ। संसार भावना की उपलब्धि यही है कि संसार के सुख-दुखों के स्मरण से मन उन भोगों से विरक्त बने।

## (४) एकत्व भावना

एकत्व भावना में केन्द्रस्थ विचार यह है कि प्राणी आत्मा की दृष्टि से अकेला आया है और अकेला ही जायेगा। वह अपने कृत्यों का स्वतन्त्र कर्ता, हर्ता और भोक्ता है। इसलिये व्यक्ति को अकेले ही अपना स्थायी हित करना है। धर्म का आश्रय लेना है। उसे निज स्वभाव में मग्न होकर "**एकोऽहम्**" मैं अकेला हूँ। "**नत्थि मम कोई**" मेरा कोई नहीं है। यह बार-बार विचार कर नमि राजर्षि की भाँति परमानन्द को प्राप्त करना चाहिए।

## (५) अन्यत्व भावना

अन्यत्व भावना का चिन्तन हमें यह सूत्र देता है—**अन्नो जीवो अन्नं इमं सरीरं**—अर्थात् यह जीव अन्य है, शरीर अन्य है। जो बाहर में है, दीख रहा है, वह मेरा नहीं है, जो काम-भोग प्राप्त हुए हैं, वे भी मेरे नहीं हैं। वे सब मुझसे भिन्न हैं। यदि मैं भिन्न वस्तु में, पर वस्तु में अपनत्व बुद्धि करूँगा तो वह मेरे लिये दुखों और चिन्ताओं का कारण होगा। इसलिये पर वस्तुओं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से आत्मा को भिन्न समझना चाहिए। आत्मगुणों को पहचानने के लिए भगवान् महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है—

**सकम्म बीओ अवसो पयाइ, परं भवं सुन्दर पावगं वा ॥**

(उत्त० अ० १३, गा० २४)

अर्थात् यह पराधीन आत्मा द्विपद, दास-दासी, चतुष्पद-घोड़ा, हाथी, खेत, घर, धन, धान्य आदि सब कुछ छोड़कर केवल अपने किये हुए अच्छे या बुरे कर्मों को साथ लेकर परभव में जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि ये सब पदार्थ पर हैं अर्थात् साथ जाने वाले नहीं हैं, फिर इनमें आनन्द क्यों मनाना ? इस शरीर से आत्मा को भिन्न मानना ही अन्यत्व भावना है।

## (६) अशुचि भावना

यह शरीर अनित्य है, अशुचिमय है, मांस, रुधिर, चर्बी इसमें भरे हुए हैं। यह अनेक व्याधियों का घर है, रोग व शोक का मूल कारण है। व्यक्ति सुन्दर कामिनियों पर मुग्ध हो जिन्दगी बर्बाद कर देते हैं किन्तु उस सुन्दर चर्म के भीतर ये घिनौने पदार्थ भरे पड़े हैं। ऐसा शरीर प्रीति के योग्य कैसे हो सकता है ? इस प्रकार अशुचि भावना का चिन्तन कर शरीर की वास्तविकता समझ आत्मा पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

## (७) आस्रव भावना

अज्ञान युक्त जीव कर्मों का कर्ता होता है। कर्मों के आगमन का मार्ग आस्रव कहलाता है। आस्रव यानि पुण्य-पाप रूप कर्मों के आने के द्वार जिसके माध्यम से शुभाशुभ कर्म आत्म-प्रदेशों में आते हैं, आत्मा के साथ बँधते हैं। यह संसार रूपी वृक्ष का मूल है। जो व्यक्ति इसके फलों को चखता है वह क्लेश का भाजन बनता है। आस्रव भाव संसार परिभ्रमण का कारण है। इसके रहते प्राणी सद्-असद् के विवेक से शून्य रहता है।

आस्रव भावना के चिन्तन से आत्म-विकास होता है परिणामस्वरूप जन्म-मरण रूप संसार से मुक्त हो आत्मा अक्षय अव्याबाध सुख मोक्ष प्राप्त करती है।

## (८) संवर भावना

आस्रव का अवरोध संवर है। जैसे द्वार बन्द हो जाने पर कोई घर में प्रवेश नहीं कर सकता है वैसे ही आत्मपरिणामों में स्थिरता होने पर, आस्रव का निरोध होने पर आत्मा में शुभाशुभ कर्म नहीं आ सकते। आत्मशुद्धि के लिये कर्म के आने के मार्गों को रोकना आवश्यक है अतः व्रत-प्रत्याख्यान रूप संवर को धारण करने की भावना आना ही संवर भावना है। संवर भावना से जीवन में संयम तथा निवृत्ति की वृद्धि होती है।

## (९) निर्जरा भावना

तपस्या के द्वारा कर्मों को दूर करना निर्जरा है। निर्जरा दो प्रकार की होती है—अकाम और सकाम। अकाम निर्जरा एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के प्राणी कर सकते हैं। ज्ञानपूर्वक तपस्यादि के द्वारा कर्मों का क्षय करना सकाम निर्जरा है। अज्ञानपूर्वक दुखों का सहन करना अकाम निर्जरा है। दुष्ट वचन, परीषह, उपसर्ग और क्रोधादि कषायों को सहन करना, मानापमान में समभाव रखना, अपने अवगुण की निन्दा करना, पाँचों इन्द्रियों को वश में रखना निर्जरा है। इसी प्रकार के शुद्ध विचार निर्जरा भावना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## (१०) धर्म भावना

'धर्म' शब्द बड़ा व्यापक है। यह डूबते का सहारा, अनाथों का नाथ, सच्चा मित्र और परभव में साथ जाने वाला सम्बन्धी है। इसके अनेक रूप हैं। जो उसे धारण करता है उसके दुख सन्ताप दूर हो जाते हैं। "वत्थु सहावो धम्मो" वस्तु का स्वभाव धर्म है। अतः धर्म में दृढ़ श्रद्धा और आचरण में धर्म को साकार करते हुए हमें आत्मा को इहलोक और परलोक में सुखी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

## (११) लोक भावना

लोक का अर्थ है—जीव समूह और उनके रहने का स्थान। जैसे एक घर में रहने वाला सदस्य अपने घर के सम्बन्ध में बातचीत करता है, उसके उत्थान आदि के बारे में चिन्तन करता है वैसे ही मनुष्य इस लोक गृह का एक सदस्य है। अन्य जीव समूहों के साथ उसका दायित्व है, सम्बन्ध है क्योंकि लोक में ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ जीव ने जन्म-मरण नहीं किया हो। ऐसे लोक स्वरूप का चिन्तन व्यक्ति को वैराग्य और निर्वेद की ओर उन्मुख करता है।

## (१२) बोधिदुर्लभ भावना

अनन्त काल तक अनेक जीव योनियों में भ्रमण करते हुए यह मनुष्य भव मिला है। अनेक बार चक्रवर्ती के समान ऋद्धि प्राप्त की है। उत्तम कुल, आर्य क्षेत्र भी पाया, परन्तु चिन्तामणि के समान सम्यक्त्व रत्न प्राप्त करना बड़ा दुर्लभ है, ऐसा चिन्तन करना बोधिदुर्लभ भावना है।

शास्त्रों, विद्वानों और सन्तों ने व्यक्ति के जन्म-मरण को सुधारने और उसके व्यक्तित्व के विकास के लिये भावना की शुद्धि को जो महत्व दिया है वह सचमुच बड़ा प्रेरक है। आज व्यक्ति यदि अपने भावशुद्धि की ओर ध्यान दे तो उसके अन्तर्मन में छाया राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों का कुहरा एकदम समाप्त हो जायगा और उसका जीवन स्वच्छ निर्मल जल की भाँति शुद्ध और शीतलतादायक बन जायेगा। शुद्ध भावना से न केवल व्यक्ति को व्यक्तिगत लाभ होगा वरन् इससे पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सौजन्य का वातावरण भी बनेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org